"बनफूल" की कहानियाँ

1 - 20

हिन्दी अनुवाद: जयदीप शेखर

“बनफूल” की कहानियाँ

बँगला लघुकथाओं का हिन्दी अनुवाद

1 - 20

लेखक

“बनफूल”

अनुवादक

जयदीप शेखर

जगप्रभा

jagprabha.in

Cover Photo: Portrait of Banaphool (Oil Painting)
Artist: Rintu Roy
(Copied from the Bengali newspaper 'Pratidin')

eBook

Banphool ki Kahaniyan: Stories of Banphool
Collection of 20 short stories in Hindi (1 to 20) translated from Bengali.
Original Author: ''Banaphool''
(Balai Chand Mukhopadhyay)
Hindi Translation: Jaydeep Das
(Pen Name: Jaydeep Shekhar)
Copyright © 2022 Translator
All rights reserved
Available at: jagprabha.in

"बनफूल"

(1899 - 1979)

बँगला साहित्य के सुप्रसिद्ध कथाकार "बनफूल" (बालाय चाँद मुखोपाध्याय) का रचना-संसार यूँ तो बहुत विशाल है- 14 नाटक, 60 उपन्यास, 586 कहानियाँ, हजारों कविताएं, अनगिनत लेख, कई एकांकियाँ और एक आत्मकथा; लेकिन वे जाने जाते हैं अपनी पेज भर लम्बी सरस, चुटीली कहानियों के कारण, जो विस्मय के साथ समाप्त होती हैं- जैसे कि एक अच्छा शेर। ऐसे शब्दचित्रों को अँग्रेजी में 'विनेट' (Vignettes) अर्थात् 'बेलबूटे' कहा जाता है।

विलक्षण प्रतिभा के धनी इस कथाकार के नाम से हिन्दीभाषी साहित्यरसिक कम परिचित हैं, क्योंकि उनकी रचनाओं का हिन्दी अनुवाद बहुत कम हुआ है- नहीं के बराबर।

प्रस्तुत हिन्दी अनुवादों में बहुत स्थानों पर "बनफूल" के द्वारा प्रयुक्त संस्कृतनिष्ठ शब्दों को ज्यों-के-त्यों रहने दिया गया है, ताकि उनकी शैली के बारे में अनुमान लगाया जा सके।

***

कहानियाँ

1.अमला 6
2.पारूल की बिल्ली 7
3.अपना-पराया 9
4.अनजाने में 10
5. कली, भौंरा और जुगनू 11
6.दूसरी शादी 15
7.रामायण का एक अध्याय 18
8.विधाता 19
9.राम नाम सत्य है 21
10. सनातनपुर के वासी 25
11. अलकनन्दा 30
12. बदला जमाना 42
13. नकारे की आत्मकथा 49
14. वैष्णव-शाक्त 51
15. स्त्री-स्वभाव 54
16. जगमोहन 58
17. मालिक-नौकर 62
18. पत्थर का टुकड़ा 65
19. जाग्रत देवता 68
20. दर्जी 71

1. अमला

(अमला)

अमला को आज देखने आनेवाले थे। पात्र का नाम था अरुण। नाम सुनते ही अमला के दिल में मानो अरुण आभा छिटक गयी। कल्पना में उसने कितनी छवियाँ ही न बना डाली। सुन्दर, सुशील, बलिष्ठ, माथे पर करीने से काढ़ी गयी मांग। कुर्ता पहने हुए- सुन्दर सुपुरुष।

अरुण का भाई वरूण उसे देखने आया। वह उसे ओट से देखकर सोचने लगी- 'मेरा देवर।'

लड़की देखना हो गया। लड़की पसन्द आयी। यह सुनकर अमला की खुशी का ठिकाना न रहा। रात उसने ढेरों सपने बुन डाले। ""

लेकिन शादी नही हुई- दहेज की रकम पर बात अटक गयी।

-दो-

फिर कुछ दिनों के बाद अमला को देखने आए। इस बार लड़का स्वयं आया। नाम हेमचन्द। इस बार अमला ने छिपकर ओट से देखा- धीर-गम्भीर सुन्दर चेहरा, गोरा रंग, घुंघराले बाल, सुनहरी फ्रेम कर चश्मा, बहुत ही खूबसूरत।

फिर अमला का मन धीरे-धीरे इस नए आगन्तुक की ओर बढ़ गया।

कितनी ही बातें सोचने लगी वह।

इस बार दहेज पर तो बात बनी, लेकिन लड़की पसन्द नहीं हुई।

-तीन-

अन्त में लड़की पसन्द भी हुई- दहेज पर सी बात बनी- शादी भी हुई। पात्र हैं विश्वेश्वरबाबू। मोटे काले गोल-मटोल हृष्ट-पुष्ट सज्जन, बी.ए. पास, सरकारी दफ्तर में नौकरी करते हैं।

अमला के साथ जब उनकी शुभदृष्टी हुई, तब पता नही क्यों, कैसी एक ममता से अमला का सारा हृदय भर गया। ऐसा शान्त, शिष्ट, निरीह पति पाकर अमला मुग्ध हो गयी।

अमला सुखी है।

***

2. पारूल की बिल्ली

(पारूल प्रसंग)

"वह क्या तुम्हारी तरह कमा कर खायेगी?"

"कमाकर न खाये- मतलब, मछली-दूध चोरी कर के खाना-"

"अपने हिस्से की मछली-दूध मैं उसे खिलाऊँगी।"

"सो तो तुम खिलाती ही हो- इसके अलावे जो वह चोरी करती है? इस तरह रोज-रोज-"

"बढ़ा-चढ़ा कर बोलना तो तुम्हारी आदत है। वह रोज चोरी करके खाती है?"

"जो भी हो, मैं बिल्ली को मछली-दूध नहीं खिला सकता। पैसे मेरे पास कोई फालतू नहीं हैं।"

इतना कहकर क्रुद्ध विनोद ने पास खड़ी बिल्ली मेनी पर चप्पल खींचकर दे मारी।

एक छोटी उछाल से वार बचाकर मेनी बाहर चली गयी। इसी के साथ ही पत्नी पारूललता भी आँखों को आँचल से ढाँपते हुए उठ खड़ी हुयी। विनोद कुछ देर गुम-सुम बैठा रहा। आखिर कब तक? अन्त में वह भी उठा। आकर देखा, पश्चिम ओर के बरामदे पर चटाई बिछाकर अभिमान में पारूललता ने भूमि-शैया ग्रहण कर रखा है।

बात को हल्का बनाने के ख्याल से विनोद ने हँसकर कहा, "क्या बचपना कर रही हो? मैं क्या सचमुच तुम्हारी बिल्ली को भगाये दे रहा हूँ?"

पारूल ने कोई उत्तर नहीं दिया।

विनोद ने फिर कहा, "चलो-चलो, तुम्हारी बिल्ली को मछली-दूध ही खिलाया जाय।"

पारूल ने कहा, "हाँ, वह तुम्हारी मछली-दूध खाने के लिए बैठी हुई है न? भगाना ही था, तो इस अँधेरी रात में भगाना जरूरी था?"

"अच्छा, मैं उसे ढूँढ़ कर लाता हूँ- आखिर जायेगी कहाँ?"

विनोद लालटेन लेकर बाहर आया। इघर-उघर, गली-कूचों में, बाग में, चारों तरफ उसने ढूँढ़ा, लेकिन मेनी नहीं मिली। निराश हो, लौट के आकर उसने देखा, पारूल उसी तरह सोयी हुई थी।

"कहाँ, वह तो नजर नहीं आई बाहर। वह खुद ही लौट आयेगी। चलो, खाना खाते हैं।"

"चलो तुम्हें खाना दे देती हूँ, मुझे भूख नहीं है आज।"

"हंगर-स्ट्राईक का इरादा है क्या?"

पारूल ने रसोईघर में आकर जो देखा, वह संक्षेप में इस तरह था- देगची में एक बूँद भी दूध नहीं था, भुनी हुई मछली गायब थी और दाल की कटोरी औंधी पड़ी थी।

यह विचित्र मामला देखकर पारूल चकित रह गयी।

इस सम्बन्ध में और बात करना खतरे से खाली नहीं- सोचकर विनोद जो सामने आया, वही खाने बैठ गया।

पारूललता ने भी कुछ खाया।

दोनों जब सोने के लिए गए, तो देखा- मेनी कुण्डली मारकर आराम से उनके बिस्तर पर सो रही थी।

***

3. अपना-पराया

(आत्म पर)

सारे सुबह की मेहनत के बाद दोपहर दक्षिण तरफ के बरामदे पर एक बिस्तर बिछाकर जरा लेटा था। नीन्द अभी आयी ही थी कि चेहरे पर थप्-से क्या एक चीज आकर गिरी। हड़बड़ा कर उठकर देखा, एक बेडौल कुत्सित घरेलू-मैने का बच्चा था- शरीर पर रोआँ नही, पंख नहीं, लिजलिजा-सा। गुस्से और घृणा से भरकर उसे उठाकर मैंने आँगन में फेंक दिया। पास ही में एक बिल्ली मानो इन्तजार कर रही थी- गप्-से उसे मुँह में भरकर वह चली गई। मैनों ने चीख-पुकार मचाना शुरू कर दिया।

इधर-उधर करवटें बदलने के बाद मैं फिर सो गया।

इसके बाद चार-पाँच वर्ष बीत गए।

मेरे घर में अचानक एक दिन मेरा ही प्यारा-दुलारा इकलौता बेटा शचीन साँप काटने से चल बसा। डाक्टर, कविराज, ओझा, वैद्य- कोई उसे बचा नहीं पाया। शचीन हमेशा के लिए हमलोगों को छोड़कर चला गया।

घर में रोना-धोना मच गया। हाहाकार!

अन्दर मेरी पत्नी मूर्छित बेहोश पड़ी थी। उसे लेकर घर के कई लोग व्यस्त हो उठे। बाहर आकर देखा, अर्थी पर लिटाकर मेरे लाल को ले जाने की तैयारी चल रही थी।

ऐसे में, इतने दिनों बाद- पता नही क्यों, उस घरेलू-मैने के बच्चे की बात याद आ गयी।

चार-पाँच वर्ष पहले की उस निस्तब्ध दोपहर में बिल्ली के मुँह में वह असहाय चिड़िये का बच्चा और उसके चारों तरफ पक्षी माताओं का आर्त्त हाहाकार।

अचानक एक अनजाने ईशारे से मैं सिहर उठा।

***

4. अनजाने में

(अजान्ते)

उस दिन ऑफिस में तनख्वाह मिली।

घर लौटते हुए सोचा, उसके लिए एक चोली खरीदकर लेता चलूँ। बेचारी बहुत दिनों से कह रही है।

इस दुकान उस दुकान से ढूँढकर कपड़ा खरीदने में प्राय शाम ढल गयी। इधर खरीदकर निकला, उधर बारिश भी शुरू हो गयी। क्या करता- रूकना पड़ा। बारिश धीमी होने पर नाईटी को बगल में दबाए छाता तानकर मैं चल पड़ा। चौड़े रास्ते तक ठीक आया। उसके बाद ही गली थी, वह भी अँधेरी।

गली से मैं अन्यमनस्क होकर सोचते हुए जा रहा था- बहुत दिनों बाद आज नयी नाईटी पाकर उसकी खुशी का ठिकाना नहीं रहेगा। आज मैं-

उसी वक्त अचानक एक आदमी मेरे ऊपर आ गिरा। वह भी नीचे गिरा और मैं भी गिर पड़ा- कपड़ा कीचड़ में लथपथ हो गया।

मैंने उठकर देखा, वह आदमी तब तक उठा नहीं था- उठने का उपक्रम कर रहा था। मारे गुस्से के मेरा सर्वांग जल उठा। मारा एक लात।

"सूअर कहीं के, रास्ता देखकर चला नहीं जाता?"

मार खाकर वह फिर गिर पड़ा, लेकिन कोई जबाब नही दिया उसने। इससे मुझे और गुस्सा आया- और मारने लगा मैं उसे।

शोरगुल सुनकर पड़ोस के घर का एक दरवाजा खुला। लालटेन हाथ में लिए एक सज्जन ने बाहर आकर पूछा, "क्या बात है भाई साहब?"

"देखिये ना साहब- रास्केल ने मेरा इतना कीमती कपड़ा खराब कर दिया। कीचड़ में लथपथ हो गया एकदम। रास्ता चलना भी नही आता, सीधे मेरे कँधे पर आ गिरा- "

"कौन- वो? ओह, रहने दीजिए साहब, माफ कर दीजिए, उसे और मत मारिए। वह बेचारा अँधा, गूँगा भिखारी है, इसी गली में रहता है- "

मैंने उसकी ओर देखा, मार की चोट से वह बेचारा काँप रहा था- शरीर कीचड़ से लथपथ- और मेरी तरफ कातर भाव से अँधदृष्टी उठाकर दोनों हाथ जोड़ रहा था।

***

5. कली, भौंरा और जुगनू

(भैरबी ओ पूरबी)

बाग में एक कली खिली- मानों वनलक्ष्मी के हाथों रची एक कविता। सुगन्ध में रंग में छन्द में अपरूप। फूल ने इधर-उधर देखा, उसके चारों ओर आनन्द का उत्सव लगा था। आकाश बाताश आलोक में जाने कैसी एक आकुलता थी! विस्मित दृष्टि से देख-देख कर उसकी पलकें नहीं झपक रही थीं।

आकाश के नील से भरा नयन
आलोक के सुहाग से आकुल तनु,
रूपसी ऊषा के स्वर्ण स्पर्श से
हर्ष से भर उठा प्रति अणु।

कौन जाने कह रहा था-

वनलक्ष्मी का स्वप्न
जो तुमने धरी है काया,
तभी तो वन-भर में बज रही आशावरी
प्रकाश में लगी है रंगीन माया।

गुनगुनाते हुए जाने किसने उसके कानों में कहा-

अंग भरकर लायी हो वर्ण
आँकी हो नयनों में मोहन छवि-
आँखें उठाकर देखो आज इस प्रभात
आया हूँ मैं तुम्हारा ही कवि।

चकित होकर कली ने पूछा, "कौन हो तुम?"

"मैं भ्रमर।"

"क्या चाहते हो?"

भ्रमर बोला-

क्या जो चाहता हूँ सखि वही तो नहीं जानता
तब मन कहता है आज इस प्रात
थोड़ा-सा मधु तुम दे देती
अपने रंगीन सुहाग के साथ!

चेहरा उठाकर सखि आँखें मलकर देखो
विफल न करो ऐसी बयार,
गुण्ठन खोलो एकबार सजनी
तुम्हें ही मैंने किया है प्यार।

यह सुनकर कली को लज्जा आ गयी, उसने सर झुका लिया। वृन्त के ऊपर वह अपनी लाज से सिकुड़ी देह को मानो छुपा देना चाहती थी। अलि घूम-फिर कर गाने लगा-

गुण्ठन खोलो ओ काननिका
व्यर्थ न करो ऐसी बयार।
गुण्ठन खोलो, गुण्ठन खोलो
तुम्हें ही मैंने किया है प्यार।

कली लेकिन गुण्ठन नहीं ही खोल पायी। अपरिसीम लज्जा से उसका सर्वांग मानो आड़ष्ट अवश हो आया। उसके हृदय के द्वार जाने कौन मिनती करते हुए कहने लगा- "ना, ना, ना- ना- ना-"

अन्त में भ्रमर ने कहा, "ठीक है। मैं चला तब।"

ऐसी हवा ऐसा प्रकाश शायद फिर नहीं आयेगा,
आया भी तो प्रेमी ऐसा दिल को नहीं लुभायेगा।
आज इस प्रात उस रवि में संगीत बजा है भैरवी में
शायद इसमें फिर कभी यह माधुर्य नहीं छायेगा।

भ्रमर का गुंजन दूर होते हुए सुदूर में खो गया।

भ्रमर जब चला गया, तब आश्चर्य! कली मानो सोते से जागी। उसके हृदय के अन्दर गीत गूँजने लगा-

गुण्ठन खोलो एकबार ओ सजनी
तुम्हें ही मैंने किया है प्यार।

उसकी रंगीन पँखुड़ियाँ सुगन्ध से भर उठीं। गहरी साँस छोड़कर वह मन-ही-मन प्रार्थना करने लगी, 'काश, वह एकबार फिर आ जाय!' लेकिन वह नहीं आया। फूल की प्राणभरी कामना से प्रभात-समीर भी मदिर हो गया। प्रभात बीत गया, द्विप्रहर उत्तीर्ण हुआ, सन्ध्या ढलने को आई; लेकिन कहाँ वह, जिसकी याद में-

अंग-अंग से अविराम उठ रहा उच्छ्वास

छन्द भरा घना गन्धभार
जिसके गीत से मुखरित गगन-पवन
मुखरित प्रकाश-अन्धकार!

कहाँ वह? वह तो लौटकर नहीं आया। सन्ध्या की कालिमा गहराने लगी।

छोटी कली के अन्धकार में प्रकाश जलाते हुए जुगनू आया।

म्लान कण्ठ से कली ने उससे पूछा, "तुम कौन हो भाई?"

"मैं जुगनू हूँ।"

आग्रह भरे स्वर में कली ने पूछा, "तुम उसे जानते हो?"

"किसे?"

"जो आज सुबह गीत गाकर मुझसे कह रहा था- 'गुण्ठन खोलो', उसकी प्रतीक्षा में सारा दिन बैठी रही मैं। वह तो लौटकर नहीं आया। तुम उसे जानते हो?"

जुगनू बोला, "लगता तो नहीं है।"

कली ने विनती की, "अगर उससे भेंट हो, तो कहना वह फिर एकबार आये।"

"भेंट हो गयी तो कहूँगा।" यह कहकर जुगनू उड़ गया। सन्ध्या की मृदु हवा में काँप-काँपकर कली का सर्वांग मानो गीत गाने लगा।

सन्ध्या का अन्धकार निविड़ से निविड़तर हो गया।

अगले दिन शाम जुगनू ने आकर बताया, "उसे ढूँढ़ नहीं पाया मैं।"

कली बोली, "किसे?"

"तुम कल जिसके बारे में बता रही थी।"

"मैं तो कल नहीं थी- आज खिली हूँ।"

"कल वाली कली कहाँ गयी?"

"वह तो झड़ गयी। उसी के पास वाली डण्ठल पर मैं आज खिली हूँ।"

जुगनू चुप रह गया।

तभी नयी कली ने पूछा, "अच्छा, तुम एक को पहचानते हो?"

"किसे?"

"जो आज सुबह गुनगुनाते हुए मुझे बोल गया-

गुण्ठन खोलो ओ काननिका
व्यर्थ न करो ऐसी बयार।

उसकी प्रतीक्षा में आज सारा दिन बैठी हूँ मैं। यदि उससे मिलो, तो फिर एकबार आने के लिए कहना। कहोगे न?"

"मिलूँगा तो कहूँगा।"- मुस्कुराकर जुगनू उड़ गया- अन्धकार के सीने में छोटा एक टिमटिमाता प्रकाश विन्दु।

***

6. दूसरी शादी

(अद्‌वितीया)

अच्छा-भला था मैं।

ऑफिस में साहब और घर में गृहलक्ष्मी की मुझपर कृपा थी। साहब मेरा वेतन और गृहलक्ष्मी मेरा परिवार बढ़ा रही थी। मेरे माता-पिता के खानदान में कोई और था नहीं, सो विरासत में कुछ पैसे भी मिल गये थे। मजे में जिन्दगी कट रही थी।

प्रभावती, अर्थात् मेरी गृहिणी ने प्रतिवर्ष डेढ़ के हिसाब से सन्तान-प्रसव कर मुझे चार वर्ष में ही छः पुत्र-कन्याओं का मालिक बना दिया था- बीच में दो बार जुड़वाँ बच्चे हुए थे।

ऐसी जनसंख्या-वृद्धि के बावजूद कोई अभाव नहीं था। अचानक लेकिन बेवकूफ बनना पड़ा।

पाँचवे वर्ष में भी गृहिणी ने स्वाभाविक गर्भ-धारण कर रखा था। इस बार लेकिन मामला स्वाभाविक होते हुए भी सहज नहीं रहा। कारण वे चल बसीं। वे अपने मायके शान्तिपुर में थीं। हालांकि मेरे सास-ससुर दोनों के गुजरे वर्षों बीत चुके थे; फिर भी, मेरा साला विनोद चूँकि डॉक्टर था, इसलिए हर बार वे वहीं जाती थीं।

विनोद ने लिखाः

"अचानक 'एक्लेंप्सिया' होकर दीदी तीन-चार घंटों में ही चल बसीं। आपको खबर करने का समय नहीं मिला। उनकी 'किडनी' खराब थी। संझली दीदी बच्चों को लेकर सम्बलपुर चली गयी हैं। उनका पत्र शायद आपको मिल गया होगा।"

वह पत्र भी मिला। उन्होंने लिखा था- "क्या करें बताओ? सब ऊपरवाले की लीला है। अपने बच्चों को कुछ दिन मेरे पास ही रहने दो। मेरे तो बच्चे हैं नहीं। यहाँ कोई परेशानी नहीं होगी। चिन्ता मत करना। इति...."

किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर छुट्टी के लिए आवेदन किया। दुर्भाग्यवश मेरे साहब का भी तबादला हो गया था। अतः छुट्टी मंजूर नहीं हुई।

-दो-

दो महीने बाद।

सम्बलपुरवासिनी मेरी साली साहिबा का एक और पत्र आया। इधर-उधर की बातों के बाद उन्होंने लिखाः

"प्रभा तो सतीलक्ष्मी भाग्यवती थी। वह तो अब चली ही गयी। अपने पीछे भरी-पूरी गृहस्थी छोड़ गयी है। इस गृहस्थी का उजड़ना अच्छा नहीं लग रहा है। ऐसा उचित भी नहीं है। मेरी बात मानो और दूसरी शादी कर लो तुम। ....यहाँ एक अच्छी-भली लड़की है। तुम कहो तो बात चलाऊँ। मुझे तो वह लड़की बहुत पसन्द है! तुम्हें भी जरूर पसन्द आएगी।" इसी तरह की और भी बातें।

सात दिन सोच-विचार कर- अर्थात् एक पैकेट चाय और दर्जनों सिगरेट फूँककर- मैंने इस चिरन्तन समस्या का जो हल निकाला, वह कोई असामान्य नहीं था। संझली'दी को जो पत्र लिखा, उसका मजमून कुछ इस प्रकार थाः

"दूसरी शादी करने को जी नहीं चाहता। प्रभा की हमेशा याद आती है। लेकिन बात यह है संझली'दी कि मेरी इच्छा-अनिच्छा से तो यह दुनिया चलती नहीं है। वह तो अपनी रफ्तार से चल रही है और चलती रहेगी। अतः ऐसे में भावुक होना शोभनीय होते हुए भी बुद्धिमानी नहीं है। दूसरी शादी में फिर क्या पसन्द-नापसन्द! तुम्हें तो पसन्द है न? ...."

धीरे-धीरे विवाह का दिन निश्चित हुआ। सम्बलपुर में ही विवाह होना था। संझली'दी बुद्धिमति थीं। उन्होंने लिखा, "बच्चों को बड़ी'दी के पास लाहौर भेज दिया है। पिता की शादी नहीं देखनी चाहिए।" मैंने चैन की साँस ली।

यथासमय साहब को हाथ-पाँव जोड़कर हफ्ते भर की छुट्टी लेकर मैं रवाना हुआ। अकेले ही। इस शादी का भला किसी से क्या जिक्र करना? पता नहीं, क्या सोचकर मैंने मूँछें भी साफ करा लीं। एक तो काला मोटा चेहरा- उसपर खिचड़ी बालों का एक गुच्छा मूँछ लेकर शादी के लिए जाते हुए खुद ही अजीब-सा लगा।

विवाह-अनुष्ठान!

लाल जोड़े में लाज से सिकुड़ी वह लड़की मेरी जीवन-संगिनी बनने जा रही है। प्रभा को भी एकदिन इसी तरह पाया था- पता नहीं वह कहाँ चली गई! आज उसकी जगह कोई और आ रही है। पता नहीं, इसकी 'किडनी' कैसी होगी! बहुत तरह की बातें मन में घुमड़ने लगीं। प्रभा का चेहरा बार-बार याद आने लगा। बच्चे पता नहीं अभी क्या कर रहें होंगे? ....मृत्यु के बाद आत्मा क्या सचमुच भटकती है? यह लड़की काफी लम्बी-चौड़ी जान पड़ती है; लेकिन बहुत सिकुड़कर